

योग ऋषियों द्वारा मानव चेतना का अभ्युदय

सारांश

वैदिक योग ऋषियों ने ध्यानयोग से परमसत्ता का साक्षात्कार किया और कहा कि मानव चेतना अर्थात् व्यष्टि चैतन्य, समष्टि चैतन्य का ही अभिन्न अंश है क्योंकि संपूर्ण जगत् परमसत्ता (समष्टि चैतन्य) का कामनामय रूप माना गया है। उन्होंने कहा कि मानव चेतना के अपरोक्ष ज्ञान में विश्व जगत् का जो स्वरूप प्रत्यक्ष होता है वही इस विश्व जगत् का पारमार्थिक स्वरूप होता है। वे अपने में सारी सृष्टि को ओर सारी सृष्टि में अपने आप को देखते थे।

प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति की मान्यता के अनुसार सृष्टि के आदि से परमपिता परमात्मा ने मानव के कल्याणार्थ योग ऋषियों के माध्यम से उन्हें वेद का ज्ञान प्रदान किया था। सृष्टि के प्रारंभ से इस ज्ञान के आलोक में मानवीय चेतना का विकास होता रहा। वैदिक ऋषियों ने 'ध्यानयोगानुगत' ध्यान योग में परमसत्ता का साक्षात्कार किया और कहा कि परमसत्ता (समष्टि चेतना) न तो सदगुरु से (लौकिक वस्तुओं के रूप से) और न ही असद रूप से (शून्य/अभाव रूप से) व्याख्यात है।

मुख्य शब्द : योग ऋषि, परमसत्ता, साक्षात्कार, सृष्टि, मानवीय चेतना प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति की मान्यता के अनुसार सृष्टि के आदि से परमपिता परमात्मा ने मानव के कल्याणार्थ योग ऋषियों के माध्यम से उन्हें वेद का ज्ञान प्रदान किया था। सृष्टि के प्रारंभ से इस ज्ञान के आलोक में मानवीय चेतना का विकास होता रहा। वैदिक ऋषियों ने 'ध्यानयोगानुगत' ध्यान योग में परमसत्ता का साक्षात्कार किया और कहा कि परमसत्ता (समष्टि चेतना) न तो सदगुरु से (लौकिक वस्तुओं के रूप से) और न ही असद रूप से (शून्य/अभाव रूप से) व्याख्यात है।

“ऋषि का अर्थ”

वेद को ईश्वरीय ज्ञान के रूपों में साक्षात्कृत धर्मा ऋषि – महर्षियों ने अपने अन्तःचक्षुओं से प्रत्यक्ष दर्शन किया और तदन्तर उसे प्रकट किया। इसी कारण महर्षि यास्क ने ऋषियों को मन्त्रदृष्टा कहा है – “ऋषयों मन्त्रदृष्टारः”¹

‘ऋषि’ शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में कतिपय विद्वानों का मत है कि ‘सर्वधातुभ्य इण’ तथा ‘इगुपधात् कित्’ – इन सूत्रों के आधार पर ‘ऋषिगतों’ धातु से ‘इण’ प्रत्यय हुआ, कित् होने के कारण गुण नहीं हुआ और ऋषि शब्द बन गया।²

इसी प्रकार (दुशिर प्रेक्षणो)³ धातु से ‘ऋषि’ शब्द की निष्पत्ति मानी जाये तो अधिक उपयुक्त होगा। ऐसा मानने पर ‘दृष्टि’ शब्द से ‘दकार’ का लोप होकर बने हुये ‘शब्द’ का अर्थ होगा – दृष्टा।

सायणभास्य के अनुसार

अतीन्द्रिय पदार्थों का तपस्या द्वारा साक्षात्कार करने वाला।⁴

ऋग्वेद मण्डल 3, सूक्त 43, मन्त्र 5 में उसे ही ऋषि कहा गया है, जो अतीन्द्रिय दृष्टा है।⁵

कात्यायन के सर्वानुक्रमसूत्र में कहा गया है – ‘दुष्टार ऋषयः स्मर्तारः।’ अर्थात् ऋषि मन्त्रों के दृष्टा और स्मर्ता है।

महर्षि यास्क ने निरुक्त-में लिखा है-‘ऋशिदर्शनात् स्तोमान् ददर्श।’ आशय यह है ऋषियों ने मन्त्रों को देखा इसलिये उनका नाम ऋषि पड़ा।⁶

“दिव्य शक्ति आत्मशक्ति ब्रह्मशक्ति त्रिगुणमय भूत समुदाय के द्वारा आच्छादित हो रही है उसी की विच्छुरित विभा को ध्यान दृष्टि के द्वारा ऋषियों ने देखा था।”⁷

इस प्रकार अपनी तपस्या रूप ज्ञानात्मिक शक्ति के द्वारा वैदिक मन्त्र शक्ति का जिन्होंने दर्शन किया। वे “ऋषि” कहलाये।

भारतीय ऋषियों द्वारा मानव चेतना का अभ्युदय

मानव चेतना स्वभावतः इन्द्रिय और मन के अनुगत होकर विश्व जगत्

रीना मिश्रा

अतिथि व्याख्याता

योग विभाग

रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय,

जबलपुर, म.प्र.

में परिचय प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करती है इससे मानव चेतना के क्रमशः विकासशील ज्ञान के सामने यह विश्व जगत् देशकालाधीन शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध विशिष्ट नित्य परिवर्तन शील असंख्य खण्ड पदार्थों के समष्टि रूपा से प्रतीत होता है । किन्तु मानव-चेतना की अन्तः प्रवृत्ति में एक ऐसी प्रेरणा है, जिसके कारण विश्व जगत् के इस बाहरी परिचय से वह तृप्त नहीं हो सकती। इन्द्रिय समूह और मन इस जगत् का जो परिचय मानव चैतन्य के सामने उपस्थित करते हैं, वह मानो उसका सच्चा परिचय नहीं है, उसके यथार्थ स्वरूप का ज्ञान नहीं है। स्पष्ट है कि- व्यष्टि चेतना अज्ञान के कारण स्वयं को समष्टि चेतना (परम सत्ता) से प्रथक अनुभव करती है। अज्ञान युक्त जीवात्मा चेतना के मनस् स्तर पर विद्यमान रहती है अर्थात् मानवीय चेतना का दय मनस् स्तर पर होता है।⁸

इन्द्रिय और मन का अनुवर्तन करके मानव चैतन्य जितना ही अग्रसर होता है, उतना ही उसे अनुभव होता है कि इस मार्ग में ज्ञान की, कर्म की और आनन्द की पूर्णता नहीं है। परंतु इसी प्रयत्न के द्वारा चेतना का क्रम-विकास होता रहता है। "मानव चेतना जब पूर्ण रूपा से विकसित हो जाती है, सम्यक रूप से जागृत ओर प्रबुद्ध हो जाती है, तब वह अपने ज्ञान, कर्म और भोग को इन्द्रिय और मन की अधीनता से मुक्त करने के लिये प्रयास करती है। अपने स्वरूपा भूत चित-ज्योति के प्रकाश से इस विश्व-जगत् के यथार्थ स्वरूप का साक्षात् परिचय प्राप्त करने में अपने को संलग्न कर देती है। मानव चेतना अर्थात् व्यष्टि चेतना समष्टि चैतन्य का ही अभिन्न अंश है, क्योंकि सम्पूर्ण जगत् परमसत्ता (समष्टि चेतना) कामनामय रूप माना गया है।⁹

मानव चेतना के "अपरोक्ष ज्ञान से विश्व जगत् का जो स्वरूप प्रत्यक्ष होता है वही इस विश्व जगत् का पारमार्थिक स्वरूपा होता है। यह जो इन्द्रिय मन की अधीनता से मुक्त सम्यक प्रबुद्ध मानव चेतना है इसी का नाम ऋषि चेतना है। ऋषि चेतना में जो सत्य प्रकाशित होता है, वही सम्पूर्ण जीव और जगत् का मूल तत्व और यथार्थ स्वरूप है। वह ऋषि चेतना समस्त जीवों (चेतन) का और जड़ का अबाध मिलन क्षेत्र है। प्रत्यक्ष उपलब्ध होने वाला जो जड़ चेतनात्मक जगत् है इसका उपादान और निमित्तकारण ब्रह्म ही है।"¹⁰

उस ऋषि चेतना की प्राप्ति होने पर मनुष्य के ज्ञान की, स्वाधीनता की, आनन्द की और कल्याण की पूर्णता हो जाती है । मनुष्य की चेतना उस समय देश-काल की सीमा का अतिक्रमण कर, कार्य-कारण, श्रृंखला के बंधन से छूटकर, राग-द्वेष, भय-भावना से उपर उठकर, सब प्रकार के आवरण और विक्षेप से मुक्ति पाकर विश्व-जगत् के यथार्थ स्वरूप को देखती है, और अपने यथार्थ स्वरूप में प्रतिष्ठित होती है । प्राचीन भारत में जिन- "असाधारण महामानव पुरुषों ने ऋषि चेतना प्राप्त करके अतीन्द्रिय और अतिमानस ज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण जीव-जगत् पारमार्थिक स्वरूप को प्रत्यक्ष देखा था, जिनकी सम्यक्-सम्बुद्ध चेतना के सामने परम् सत्य ने अनावृत और अविक्षिप्त रूप से अपने स्वरूप को प्रकट कर

दिया था । आत्म ज्ञानी, शान्त, उपरत, तितिक्षु तथा समाहित होकर आत्मा को 'आत्मा' में देखता है तथा सब कुछ आत्म स्वरूप ही देखता है ।¹¹

गुरु-शिष्य परम्परा के क्रम से उन वाणियों का तत्व-ज्ञान के पिपासु साधक-सम्प्रदाय में प्रसार हुआ है। इन्हीं सब वाणियों का आश्रय लेकर ज्ञान-पिपासु, आनन्द-पिपासु और मुक्ति-पिपासु अगणित साधकों ने अपनी स्वभाविक ज्ञान शक्ति, कर्म शक्ति और चित्तवृत्तियों का भलीभांति नियंत्रण करके अपनी चेतना को इन्द्रिय-मनकी अधीनता से मुक्त किया है। और उस मुक्त चेतना के द्वारा उन सब दिव्य वाणियों के अनुसार अपरोक्ष अनुभव प्राप्त करके वे कृतार्थ हुए हैं । उन साधकों के जीवन की कृतार्थता को देखकर समाज के सभी श्रेणी के नर-नारियों को उन वाणियों की सत्यता के संबंध में संदेहरहित दृढ़ विश्वास हो गया ।

प्रथमतः हमारे इन्द्रिय-मन के द्वारा उपलब्ध ज्ञान ने इस विश्व-जगत् को अनन्त विषमताओं से पूर्ण देख पाया है । उसने समझा है कि-"विभिन्न स्वभावयुक्त असंख्य पदार्थों के संघर्ष और समन्वय से ही इस जगत् का संगठन हुआ है, इसमें इतने भेद हैं, इतने द्वन्द्व हैं, इतने कार्यकारण-संबंध और इतनी नियम-श्रृंखलाएँ हैं कि जिनका कहीं भी कोई अन्त नहीं मिलता, परंतु ऋषियों की अतीन्द्रिय और अतिमानस विशुद्ध चेतना को सब प्रत्यक्ष होता है। ब्रह्म ही जगत् का कारण है। उस एक ही ब्रह्म से यह समस्त नाम जगत् उत्पन्न होता है। वहीं इस जगत् का निमित्त और उपादान कारक है। जैसे एक ही माटी से अनेक पात्र बनते हैं ओर उसी में उनका लय होता है वैसे ही यह समस्त जगत् इस परमब्रह्म से उत्पन्न होता है उसी में स्थित है व उसी ब्रह्म में लीन हो जाता है।"¹²

विश्व जगत् मूलतः सत्ताओं के रूप में इन्द्रिय-मन के सम्मुख प्रतीत होती है -"इन्द्रिय-मनोगोचर जितने भी विभिन्न पदार्थ हैं, सब एक अद्वितीय नित्य सत्य निर्विकार तत्व के ही विभिन्न रूपों ओर विभिन्न नामों में आत्म प्रकाश है, एक ही से सबका प्राकट्य है, एक के ही आश्रय से सबकी स्थिति है, एक ही सत्ता से ही सब नियन्त्रित है और परिणाम में सब एक में ही विलीन हो जाते हैं, एक के अतिरिक्त दूसरे कोई स्वतंत्र पदार्थ में नहीं। जैसे मुण्डकोपनिषद् में कहाँ गया है कि- "जिस प्रकार प्रज्ज्वलित अग्नि से उसी के समान स्फुलिंग निकलते हैं, फिर उसी में समा जाते हैं, वैसे ही ब्रह्म से जगत् निकलता है फिर उसी में समा जाता है।"¹³ सभी पदार्थों में नित्य सत्य एक अद्वितीय वस्तु-तत्व को देखते हैं । उनकी चेतना से भेदज्ञान सर्वथा दूर हो जाता है ।

द्वितीयतः हमारे ज्ञान में जीव और जड़ का-चेतन ओर अचेतन का भेद है। हम कभी इसका अतिक्रम नहीं कर सकते, परन्तु ऋषियों का अनुभव है कि यह विश्व-जगत् तत्त्वतः चैतन्यमय है। "जिस एक अद्वितीय सद्वस्तु की सत्ता से विश्व-जगत् सत्तावान है, वहीं सद्वस्तु चित्त-स्वरूपा है - "स्वयं प्रकाश है"। जीवात्मा में जो शुद्ध चैतन्य प्रकाशित हो रहा है, वही ब्रह्म

रूप इस समस्त विराट् बाह्य जगत् में भी व्याप्त है जो व्यष्टि की आत्मा है वहीं समष्टि की आत्मा है जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है।¹⁴ दूसरे के प्रकाश से जिसका प्रकाश हो, दूसरे के संबंध से ही जिसका परिचय हो और दूसरे के ज्ञान में प्रतिभात होने से ही जिसकी सत्ता हो, उस को जड़ कहते हैं। चेतन के आश्रय और सत्ता से ही, जड़ का प्रकाश और सत्ता है। समस्त विश्व-जगत् के मूल में जो एक वस्तु है, जिसका दूसरा कोई न आश्रय है और न प्रकाशक है, अपनी सत्ता से ही जिसकी सत्ता है, अपने प्रकाश से ही जिसका प्रकाश है, जो अपना अनन्त विभिन्नतामय विश्व-जगत् के रूप में परिचय दे रहा है—“वह अद्वितीय तत्व निश्चय ही स्वप्रकाश चैतन्यमय है। ऋषि चेतना सम्पूर्ण जड़ में उस एक चैतन्य स्वरूपा को देखती है। वे अपने में सारी सृष्टि को और सारी सृष्टि में अपने को देखते थे।¹⁵ इस “चराचर जगत् में जो कुछ प्रतीत होता है सब ब्रह्म ही है कोई भी वस्तु एक सच्चिदानन्द धन परमात्मा से भिन्न नहीं है।¹⁶”

तृतीयतः हमारा इन्द्रिय-मनोगोचर साधारण ज्ञान आत्मा और अनात्मा के भेद को मैं और अन्य के भेद को— व्यक्ति और विश्व के भेद को— “ज्ञाता और भोक्ता एवं ज्ञेय और भोग्य जगत् के भेद को तथा विभिन्न व्यक्तियों के पारस्परिक भेद को कभी अतिक्रमण नहीं करता, परंतु ऋषि-चेतना अपने आत्मा में और अन्य समस्त मनुष्य तथा प्राणि मात्र के आत्मा में एवं समग्र विश्व-जगत् के आत्मा में पारमार्थिक एकत्व की उपलब्धि करती है। वास्तविक योगी— “समस्त जीवों में मुझको तथा मुझसे समस्त जीवों को देखता है निःसन्देह स्वरूप सिद्ध व्यक्ति मुझ परमेश्वर को सर्वत्र देखता है।¹⁷”

वह अपने को सभी मनुष्यों, सभी प्राणियों और समस्त विश्व-प्रपञ्च को अपने में देखती है। एक आत्मा ही विभिन्न स्थावर शरीरों में विभिन्न नाम-रूपों में, विभिन्न आकृति-प्रकृति में प्रतिभात हो रहा है। “प्रबुद्ध ऋषि-चेतना इस सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव करती है। आत्मा चैतन्य है। यह संपूर्ण सृष्टि इस चैतन्य की ही अभिव्यक्ति है। यही चैतन्य विभिन्न रूपों में दिखाई देती है।¹⁸”

सम्यक्-प्रबुद्ध ऋषि-चेतना में प्रतिभात चरम सत्य को ही ऋषियों ने ब्रह्म कहा है। ‘ब्रह्म’ शब्द का शाब्दिक अर्थ है— ‘बृहत्तम’ (बहुत बड़ा), जिससे वृहद् की कोई कल्पना ही नहीं हो सकता। देशगत, कालगत, गुणगत, शक्तिगत, सत्तागत और अवस्थागत किसी भी प्रकार की सीमा, परिधि या शेष की, जिसके संबंध में कोई कल्पना नहीं की जा सकती है। ऋषियों ने कहा है ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है इन्द्रिय मनोबुद्धि गोचर विश्व जगत् और समस्त चेतन अचेतन पदार्थों का एक मात्र यथार्थ स्वरूप ही है— ब्रह्म।

ऋषि जब अपनी ओर देखते हैं तब अनुभव करते हैं— अहं ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हूँ।) अर्थात् मैं क्षुद्र देह-विशिष्ट, दुर्बल मनोविशिष्ट, सुख-दुःख समन्वित, देश-कालावस्थापरिच्छिन्न एक जीवमात्र नहीं हूँ, मैं तत्त्वतः ब्रह्म हूँ, मेरी चित् सत्ता विश्वव्यापी है, सभी मनुष्यों, सभी जीवों और सभी जड़ पदार्थों की सत्ता मेरी

सत्ता के साथ नित्य एकीभूत है। सर्वथा आसक्ति रहित और विशुद्ध अन्तःकरण वाले ऋषि लोग इस परमात्मा को पूर्णतया प्राप्त होकर ज्ञान से तृप्त एवं परम शान्त हो जाते हैं, अपने आपको परमात्मा में संयुक्त कर देने वाले ये वे ज्ञानीजन सर्वव्यापी परमात्मा को सब ओर से प्राप्त करके सर्वरूप परमात्मा में ही प्रविष्ट हो जाते हैं।¹⁹

उद्देश्य

इस शोध पत्र को लिखने का उद्देश्य, वर्तमान समय की भयाभयता ने मनुष्य को विभिन्न प्रकार के मनोकायिक रोगों से ग्रसित कर दिया है। परिणामस्वरूप व्यक्ति का शारीरिक मानसिक आध्यात्मिक विघटन हो गया है। ऐसी विषम परिस्थिति में हमारे महर्षियों द्वारा अन्वेषित योग विद्या के माध्यम से हम अपनी मानवीय चेतना को सुगठित करते हुए उसे चेतना के उच्चतम आयाम तक पहुंचाने में सफल हो सकते हैं। आज हमारा स्वयं से ही वियोग हो गया है। ऐसी स्थिति में हमारे प्राचीन ऋषि महर्षि एवं योगियों द्वारा अन्वेषित योग विद्या के द्वारा हम अपनी मानवीय चेतना का उत्थान करके जीवन के लिए वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। और वियोग को योग में परिवर्तित कर सकते हैं। इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए यह शोध पत्र प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्ष

इस प्रकार ऋषियों ने जैसे अपने को ब्रह्म स्वरूप अनुभव किया, वैसे ही सभी मनुष्यों और सभी जीवों में ब्रह्म का दर्शन करके प्रत्येक को प्रकट रूप से उन्होंने यही कहा— ‘तत्त्वमसि’ (तुम वहीं ब्रह्म हो)। उन्होंने मानवमात्र के चित्त में ब्रह्म-चेतना को जाग्रत करने का प्रयास किया। ब्रह्म चेतना के जाग्रत होने पर मनुष्यों में परस्पर भेद-संवाद नहीं रह सकता। सभी शरीरों में एक ही आत्मा की अनुभूति होने पर मन-बुद्धि-हृदय अभेद ज्ञान एवं प्रेम से भर जाते हैं। जाति-भेद, सम्प्रदाय-भेद, ऊँच-नीच-भेद, हेयोपादेय-भेद सभी मन से मिट जाते हैं। समस्त विश्व ब्रह्मधाम, सच्चिदानन्दधाम, सौन्दर्य-माधुर्य-सिन्धु बनकर आस्वाद्य हो जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वेद कथांक गीता प्रेस, गोरखपुर पृष्ठ सं. 231
2. वही, पृष्ठ सं. 372
3. वही, पृष्ठ सं. 373
4. वही, पृष्ठ सं. 373
5. वही, पृष्ठ सं. 377
6. वही, पृष्ठ सं. 377
7. कल्याण उपनिषद अंक, गीता प्रेस गोरखपुर पृष्ठ सं. 44
8. ईश्वर भारद्वाज, मानव चेतना, पृष्ठ सं. 15-16
9. ईश्वर भारद्वाज, मानव चेतना पृष्ठ सं. 16
10. हरिकृष्ण दास गोयन्दका, वेदान्त दर्शन (ब्रह्म सूत्र), गीता प्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ सं. 07
11. डॉ. राममूर्ति शर्मा अद्वैत वेदान्त, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली, पृष्ठ क्र. 84
12. डॉ. चंचल मिश्रा, वेदान्तत्व विवके, डिप्टी पब्लिकेशन, दिल्ली पृष्ठ क्र. 112

Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika

13. डॉ. शोभा निगम, भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास पृष्ठ क्र. 39
14. चन्द्रधर शर्मा, भारतीय दर्शन, आलोचन और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली पृष्ठ क्र. 10
15. वेद कथांक, गीता प्रेस, गोरखपुर पृष्ठ सं. 378
16. कल्याण उपनिषद् अंक, गीता प्रेस गोरखपुर पृष्ठ सं. 73
17. श्री श्रीमद् ए.सी. भक्ति वेदान्त स्वामी प्रभुपाद, गीतोपनिषद् श्रीमद् भगवद्गीता यथा रूप, भक्ति वेदान्त ट्रस्ट पृष्ठ सं. 222
18. स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द, अष्टावक्र गीता, प्रभाव प्रकाशन पृष्ठ सं. 20
19. कल्याण वेदकथांक, गीता प्रेस गोरखपुर पृष्ठ सं. 66